ISBN NO. 978-93-81794-40-1

Biodiversity Conservation And Social Change

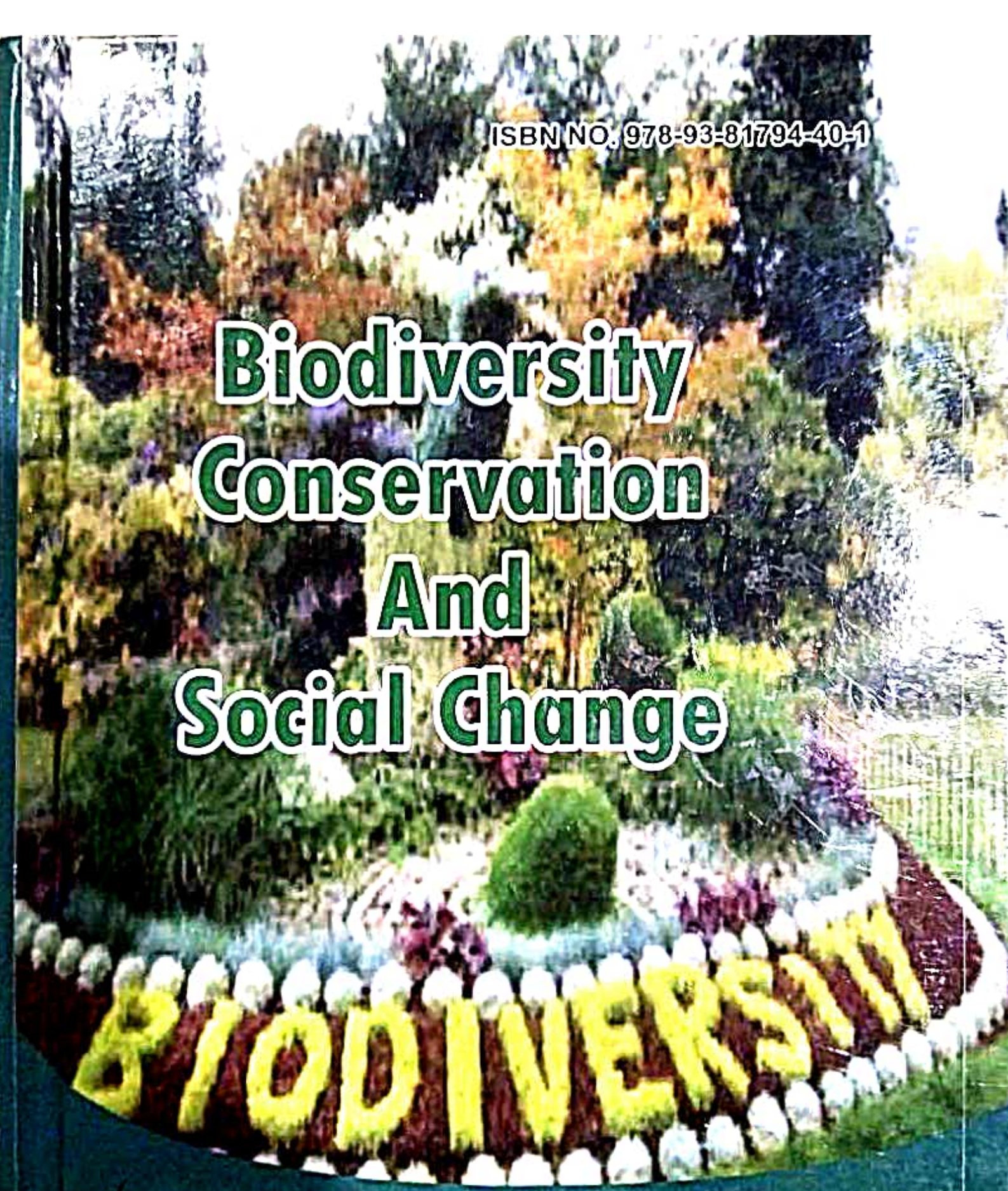

Author
Dr. (Smt.) Amita Chaturvedi

PUBLISHED BY
AJAY BOOK SERVICE
4658A/21, Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi – 110002 (INDIA)
Ph : 011-23287655, 011-41500196
Website : www.ajaybookservice.com
E-Mail : asagarbh@yahoo.com

First Edition 2020

Price : 1270/-

ISBN : 978-93-81794-40-1

All rights reserved No. Part of this Publication may be Reproduced, Stored in a retrieval Systems, or transmitted, in any form or by any means, electronic, mechanical, recording without the prior permission of Publishers.

Laser Type Setting By:
Ramisha Computer & Printers
922, Jatwara Darya Ganj, Delhi-110002

H.S. Offset Printers
New Delhi - 110002

CONTENTS

S.No	TITLE	Page No
1	**On the Synonymy of Bucephalopsis confusus Verma, 1936 and Bucephalopsis minimus Verma, 1936 with Bucephalopsis magnum Verma, 1936** Dr. Mansoor Majid Lone	1
2	**Is Third World War Enevitable for Water Crisis in the 21st Century?** Dr. Rashi Gautam	10
3	**Fresh Water Turtle Population with Reference to Water Quality Status of River Narmada at Barman, Narsinghpur** Dr. U.S. Parmar	19
4	**New Trends of Enviornment and E-Waste Management** Dr. Jagdish Prasad Shivvanshi	27
5	**Datura Innoxia and Theventia Nerifolia Induced Behavioural Changes in the Fish Garra Mullya** Dr. R.S. Dehariya	36
6	**Effect of Cadmium Toxicity on Biochemical Composition of a Freshwater Fish Rasbora Daniconius** Dr. Parwati Kushram	40
7	**Study of Antifertility Effect of Alcoholic Extract of Malva viscus conzattii Greenm in Male Albino Rats** Anchal Ramteke	49
8	**Antifertility Effect of Alcoholic Extract of Terminalia Bellirica in Male Albino Rats** Dr. Joodika Kujoor	59
9	**Plant and Plant Products Used as Hypolipidaemic /Antitherosclerotic Agents : An Overview** Dr. Seema Dhurvey	67

10 **Effect of Plant Extract (Nicotine) on the Reproductive Potential of Mutant Drosophila Melanogaster Meigen (Diptera: Drosophiledae) : Influence of Age at the Time of Treatment** 77
Vinya Benett

11 **Level and Trends of Genetic Evaluastion and Characterization of Bamboo Species** 86
Dr. B.L. Jhariya

12 **Regional Analysis of Land Use and Levels of Socio-Economic Development in Chhindwara District, Madhyapradesh** 97
Prof. Anil Shindey

13 **Commercial Development Mining As an Environmental Hazard** 106
Dr. S.N. Deheriya

14 **Environment and Double Jeopardy A Corollary of Negligent Action by Man** 122
Dr. Kirti Shrivastava

15 **Environment, Resource Management and Sustainable Development : A Theoretical Approach** 139
Dr. J.R. Jhariya

16 पर्यावरण चेतना के विकास में साहित्य की भूमिका 146
डॉ. एस.पी. धूमकेति

17 मानव–पर्यावरण एवं पर्यावरण कानून 155
लक्ष्मीकांत डहरवाल

18 पर्यावरण संरक्षण में सामाजिक सहभागिता 167
सनत कुमार डहेरिया

19 पर्यावरण प्रदूषण एवं चिंतनीय मुद्दे 172
अनीता मेश्राम

20 पर्यावरण में नई चुनौतियों व समाधान 176
डॉ. राजेश धुर्वे

16

पर्यावरण चेतना के विकास में साहित्य की भूमिका

डॉ. एस.पी. धूमकेति

हिन्दी विभाग

शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंडला (म.प्र.)

प्रस्तावना

पौराणिक काल से ही भारतीय मनीषी शुद्ध पर्यावरण के लाभ तथा अशुद्ध पर्यावरण की हानियों से अवगत थे। इसीलिए भारतीय दर्शन व धर्मग्रन्थों में पर्यावरण के तत्वों को समुचित महत्व दिया जाता रहा है। सूर्य, वायु, जल, वनस्पति, भूमि आदि तत्वों को देवतुल्य स्वीकार कर उनके महत्व को स्वीकार किया गया है। "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा तत्व मिल बना शरीरा" यह उक्ति, इस बात का द्योतक है कि ये तत्व जहाँ एक ओर मनुष्य के विकास को प्रभावित करते हैं, दूसरी तरफ मनुष्य को पृथ्वी पर सबसे सफल प्राणी बनाने में सहायक भी हैं। भारतीय दर्शन एवं पौराणिक साहित्य (धर्मग्रन्थ) के अध्ययन से उस काल के मनीषियों की पर्यावरण के प्रति सचेष्टता व समझ का ज्ञान होता है, पौराणिक साहित्य में मानव के सामाजिक व्यवहार व कर्मों को नियंत्रित तथा परिमार्जित करने के लिए पाप, पुण्य, स्वर्ग व नरक की अवधारणाएँ जीवन से जोड़ी गयी, प्राकृतिक तत्वों के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास पैदा करने के लिए उन्हें धार्मिक कर्मकाण्डों से जोड़ा गया। देखा जाये तो पौराणिक साहित्य में पर्यावरण प्रदूषण न करने की शिक्षा दी जाती रही है जिसके अंतर्गत पद्म पुराण में जलाशय, कूप व नदी के तट पर मल-मूत्र विसर्जन न करने की शिक्षा दी गयी है। पौराणिक मनीषियों को वायु के प्रदूषण रहित बनाने में वृक्षों के संरक्षण की प्रेरणा देने वाले कई प्रसंग पुराण साहित्य में दिखाई देते हैं। वायुमण्डल को प्रदूषण रहित बनाने में वृक्षों की भूमिका का सर्वाधिक महत्व है। युजर्वेद में कहा भी गया है कि वृक्ष को मत काटो। पुराण साहित्य में पूजा उपासना अथवा मांगलिक कार्यों में भूमिपूजन के विधान का उल्लेख है। पौराणिक मनीषी पृथ्वी को माता (जननी) मानकर पूजा की प्रेरणा दी गई है जिससे लोग पृथ्वी को प्रदूषित न करें, उसकी उर्वरता का क्षरण न होने दें। इस प्रकार

पौराणिक साहित्य में वायु, जल, अग्नि, वृक्ष व पशु-पक्षियों की रक्षा करने के लाभ (पुण्य) तथा हिंसित (प्रदूषित) के लिए दण्ड स्वरूप पाप व नरक का भय दिखाकर जन सामान्य के चिंतन और व्यवहार को इन प्राकृतिक तत्वों के अनुकूल बनाने के प्रयास किए गए। वर्तमान समय में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पूरे विश्व में बढ़ रही है, पर उसकी यह तीव्र गति नहीं है जितनी तीव्र गति से प्रदूषण फैल रहा है। साहित्य वह माध्यम है जिसके आधार पर प्रदूषण रोकने में सफल हो सकते हैं क्योंकि साहित्य मानव की आदि सम्प्रेषणात्मक विद्या है। इसीलिए इस युग की विनाशकारी समस्या पर्यावरण प्रदूषण तथा पर्यावरण के प्रति साहित्यकार की सोच से आज का साहित्य अछूता नहीं रहा है। भारतीय साहित्य में सदा से ही प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति साहित्यकारों का रुझान रहा है। साहित्य के विराट संसार में मनुष्य और मनुष्येतर जड़ चेतन, ज्ञान-विज्ञान, समस्त विचार एवं अनुभूतिगम्य विषय समाहित हैं। स्पष्ट है कि साहित्य में पर्यावरण का भी विशिष्ट स्थान है। भारतीय साहित्य में षडऋतु, बारहमासा आदि पर्यावरणीय घटकों का उद्दीपन के साथ आलम्बन रूप में चित्रण होता आया है। प्रकृति अपने सौन्दर्याकर्षण से साहित्यकारों को सदैव से ही सम्मोहित करती रही है। पुरा साहित्याकाश प्रकृति के सौन्दर्यमय आवरण से आच्छादित है और यह नैसर्गिक सौन्दर्य प्रकृति के संतुलन में ही निहित है। प्रकृति और मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही सहचर है। जीवन-जगत का अस्तित्व पर्यावरण की शुचिता और सुनियोजन पर ही निर्भर है। वैसे तो प्रकृति स्वयं पर्यावरणीय घटकों का निश्चित अनुपात बनाए रखने का प्रयत्न करती है किन्तु वैज्ञानिक और औद्योगिक युग के प्रारम्भ के साथ ही मनुष्य के विकास की अदम्य इच्छा शक्ति के कारण इसकी मूल संरचना में निरन्तर परिवर्तन लाये जा रहे हैं, जो सम्पूर्ण मानव समाज बल्कि पूरी सृष्टि के लिए प्रलयकारी है। साहित्यकारों ने सदा से ही प्रकृति के सौन्दर्य से न केवल परिचित कराया बल्कि चेतावनी भी दी कि यदि पालक-पोषक को अपनी विलासिता का साधन बनाया तो प्रकृति का रौद्र रूप देखने को भी हम तैयार रहें। साहित्य की भाषा में सृष्टि पंच तत्व-पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश से निर्मित है। इन तत्वों के आपसी संतुलन में ही सृष्टि का अस्तित्व सुरक्षित है। भारतीय जनमानस में प्रकृति चिरकाल से श्रद्धेय और पूजनीय रही है। वेदों से ही प्रकृति देवता-वरुण, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वनदेवी के प्रति स्तुतियाँ हमारे प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति लगाव की द्योतक है। ऋग्वेद में

प्रकृति को परम स्तुत्य माना गया। धीरे–धीरे साहित्य की यात्रा में प्रकृति के अनेक पड़ाव आये। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ काल से आधुनिक युग के पहले तक प्रकृति मानवीय संवेदनाओं के उद्वेलन का साधन भी रही और काव्य का साध्य भी रही। मध्यकाल में प्रकृति का परम्परागत वर्णन षड्ऋतु–बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर तथा बारहमासा का होते हुए भी नैसर्गिक सौन्दर्य में बेजोड़ है। तथ्य यह है कि आधुनिक औद्योगिक युग के पहले तक साहित्यकार पर्यावरण और सृष्टि के संतुलनगत सम्बन्ध से उत्पन्न सौन्दर्य पर ही काव्य दृष्टि टिका सका किन्तु जैसे ही विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य ने प्रकृति के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार तथा प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण करने के प्रयास में पर्यावरण को हानि पहुँचाना प्रारम्भ किया वैसे ही साहित्य ने उसके भावी दुष्परिणामों को संकेत किया। आधुनिक युग का प्रारम्भिक साहित्य जहाँ प्रकृति के सौन्दर्य पर विमुग्ध है वहीं प्रकृति रोष पर भयभीत भी है। पंत की परिवर्तन कविता में यह परिवर्तन दिखाई देता है

एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयकर

समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर

भूमि चूम जाते अभ्र–ध्वज सौध, शृंगवर,

नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य–भूति के मेघाडम्बर।

अये एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू–कंपन,

गिर–गिर पड़ते भीत पक्षि–पोतों से उडुगन

आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत–शत फन

मुग्ध भुजंगम–सा, इंगित पर करता नर्तन।

दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप–सा विनतानन,

वाताहत हो गगन

आर्त करता गुरु गर्जन।

इसी प्रकार प्रख्यात साहित्यकार जयशंकर प्रसाद जी ने अपने महाकाव्य कामायनी में उल्लेख किया है। मनु जहाँ पौराणिक जल प्लावन से चिंताग्रस्त है वहीं प्रकारान्तर से यह चिंता सभ्यता की चरम सीमा पर

पहुँचे मनुष्य की अबाध भोग लिप्सा तथा प्रकृति को अपने वश में करने की प्रवृति से उत्पन्न पर्यावरणीय प्रकोपवश आने वाली प्रलय की चिंता भी है

हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर

बैठ शिला की शीतल छाँह,

एक पुरुष भीगे नयनों से

देख रहा था प्रलय प्रवाह।

आश्चर्य तो यह है कि सृष्टि का सबसे बौद्धिक, विचारवान और संवेदनशील प्राणी मनुष्य स्वयं ही मीन की भाँति अपना ही भक्षक होता जा रहा है

आह स्वर्ग के अग्रदूत! तुम

असफल हुए विलीन हुए

भक्षक या रक्षक, जो समझो

केवल अपने मीन हुए।

आज का मनु अर्थात् मनुष्य अधिक से अधिक दोहन एवं संग्रह की महत्वकांक्षा के वशीभूत प्रकृति और प्राणी, जड़ और चेतन के सामंजस्य एवं प्राकृतिक संतुलन तथा अनुशासन को भूल गया है। इसी से समाज और पर्यावरण दोनों में संघर्ष सुनिश्चित है –

विश्व बंधा है एक नियम से यह पुकार सी,

फैल गई है इसके मन में दृढ प्रचार सी।

और कह रही किन्तु नियामक नियम न माने

तो फिर सब कुछ नष्ट हुआ सा निश्चय जानें।

यह मनुष्य आकार चेतन का है विकसित

एक विश्व में अपने आवरणों में हैं निर्मित।

देखा जाये तो प्रसाद जी की कामायनी के सारस्वत प्रदेश के मनु और प्रजा का संघर्ष वर्तमान समय की महाशक्तियों के आणविक ऊर्जा के विकास व एकत्रीकरण और उसके उपयोगजन्य वातावरणीय दूषितीकरण का आभास देता है। 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और 19वीं सदी का प्रारम्भ

औद्योगिक विकास और वैज्ञानिक उपलब्धियों का नवयुग लेकर आया जिसने हमारे जीवन को सुख–सुविधाओं से भर दिया, सारे विश्व को एक मंच पर खड़ा कर वसुधैव कुटुम्बकम् को साकार किया किन्तु वहीं इसने हमें प्रतिस्पर्धा के साथ संवेदनहीनता भी दी। बुद्धि के साथ विवेकहीनता और विकास के साथ विनाश की ओर भी ढकेला। हमने पर्यावरण के दूषित होने के दुष्परिणामों को नजर अन्दाज करते हुए स्पर्धावश विकास के नाम पर अपनी कोरी सुविधाओं, लालसाओं के तहत् पूरे भूमण्डलीय पर्यावरण को तरह–तरह से हानि पहुँचाई। आज पंच तत्व, जीव, वनस्पति कोई भी पर्यावरणीय घटक–अवनयन से नहीं बच पाये हैं। इस समस्या से आज पूरा विश्व जूझ रहा है और असहाय सा अनुभव कर रहा है। साहित्य को भी अनुभव हो रहा है। पर्यावरण का सजीव चित्रण साहित्य के माध्यम से प्रसाद जी ने जो कामायनी में दिखाया है वह अविस्मरणीय है उन्होंने मानव सभ्यता का एक पूरा चित्र प्रस्तुत करके यह दिखाया है कि किस प्रकार एक स्थूल भोग मूलक सभ्यता मानव जाति का नाश उपस्थित करती है। लालसा, भोग और विलास को ही चरम लक्ष्य मानकर प्रकृति की नैसर्गिक क्रियाओं में अवरोध उत्पन्न करने वाली जाति जिस जीवन प्रणाली की स्थापना करती है उसके द्वारा मानव की सच्ची शांति और अस्तित्व आकाश कुसुमवत है। ऐसे में किस प्रकार प्रतिस्पर्धावश अधिकारों की सृष्टि होती है, अपराधों की आँधी चलती है और पर्यावरणीय विघटन का विषम चक्र चल पड़ता है जिससे पूरी सृष्टि काँप जाती है। भू–रक्षण, भू–अनुर्वरता, पर्यावरणीय असन्तुलन से कभी भ–स्खलन, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ऋतुओं का अनियमितीकरण, भूकम्प, प्रलयकारी सामुद्रिक लहरों से विनाश, जीव और वनस्पतियों का विलोपीकरण आदि के रूप में प्रकृति का विनाशकारी तांडव देखने को मिलता है। यह पर्यावरण के द्वारा चेतावनी है। फ्रांस के विचारक रूसो का प्रचारित नारा प्रकृति की ओर लौट चलो यही समाधान है। ग्रिफिल ग्रिनफिल टेलर का कथन आज हमारी आवश्यकता बन गया है। ग्रिफिल टेलर का कथन जवच दक हव क्मजमतउपदपेउ आज हमारी आवश्यकता बन गया है। प्रकृति की सीमाओं में बंधकर हम विकास को गति दें। भारतीय संस्कृति में भौगोलिक, खगोलीय एवं प्राकृतिक पर्यावरण की चिंता और चिंतन के साथ नैतिक और आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रति भी विशेष ध्यान दिया गया है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय संस्कृति को अरण्य संस्कृति कहा है। अरण्य अर्थात् वन से जुड़ी इस संस्कृति से

तपोवन, त्याग और तपस्या सहज ही जुड गए। वनों का ... गिरि निर्झर और पादपों के साथ पशु पक्षी वर्ग का भी अपना महत्व है। हमारी संस्कृति में इन सभी के नदियों का भी वनों से अभिन्न सम्बन्ध है। हमारी संस्कृति में इन सभी के प्रति भाई–बहन, पुत्र–पुत्री अथवा मित्र का सा भाव रखा गया है। इसीलिए वृक्षारोपण, वृक्षसिंचन और उनका संरक्षण एक परम पवित्र कृत्य स्वीकार किया गया है, जबकि उन्हें काटना एक मनुष्य के वध के समान महापातक कहा गया है। बरगद, पीपल, आम, नीम, जामुन, आंवला, तुलसी जैसे उपयोगी वृक्षों के रोपण को महान धार्मिक कृत्य माना गया है। वट वृक्ष में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति का वास माना गया है। पीपल के वृक्ष में विष्णु रहते हैं तो बिल्ववृक्ष और कदंब के पेड़ से क्रमशः शिव और कृष्ण का सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। सामान्यतः प्रत्येक घर में तुलसी विद्यमान रहती है, यहाँ तक कि स्वर्ग लोक में एक ऐसे कल्पवृक्ष की कल्पना की गई है, जो देवताओं और ऋषियों के मनोवांछित को पूर्ण करता है। गीता में कृष्ण ने अपने आप को वृक्षों में अश्वत्थ बताया है। महात्मा बुद्ध ने पीपल के वृक्ष तले ही बोध पाया। सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में पीपल, बड, आम, अशोक आदि वृक्षों को बोधिवृक्षों का गौरव प्रदान किया गया है। आधुनिक युग में बिश्नोई संप्रदाय वृक्ष संरक्षण से जुड़ा रहा है। इस संप्रदाय में वृक्ष को बचाने के लिए प्राण न्यौछावर करने में भी संकोच अनुभव नही किया जाता है। साहित्य में वृक्षों के प्रति इस प्रेम भाव का सुन्दर विवेचन किया है। महाकवि कालिदास का सुप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम् इस दृष्टि से विशेषतः उल्लेखनीय है। इसकी नायिका शकुंतला साक्षात् वनकन्या या वन्या है। प्रकृति की पुत्री रूपा वह वृक्षों और लताओं से सहोदर भाई बहन का सा सहज स्नेह रखती है। इस नाटक का चतुर्थांक तो विशेष रूप से पर्यावरण संरक्षण का एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। हिन्दी साहित्य में वृक्षों के प्रति यह सहज प्रेम भाव अनेक स्थानों पर अभिव्यंजित हुआ है। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में रामराज्य का वर्णन करते हुए कविवर तुलसीदास वृक्षों से घिरी हरी–भरी अयोध्या नगरी का वर्णन करते हैं। मुनिजनों के सरयू तट पर तुलसिका कंद लगा रखे हैं। अयोध्यावासियों ने यत्नपूर्वक वाटिकाएँ संवारी है।

सुमन वाटिका सबहिं लगाई।
विविध भांति कर जतन बनाई।।

लता ललित बहुजाति सुहाई।
फूलंहि साद बसंत की नाई।।
तीर–तीर तुलसिका सुहाई।
वृद–बूद बहु मुनिन्ह लगाई।।

सूर के पदों में यमुना तट के कुंज वनों और लताओं का सुरम्य वर्णन हुआ है तो भारतेन्दु जी कालिंदी मूल के तमाल वृक्षों का ललित वर्णन करते हैं–तरनि तनूजा तट तमाल तरूवर बहु छाए। इस प्रकार भारतीय संस्कृति पर्यावरण के प्रति अत्यंत संवेदनशील और जागरूक रही है। अभिज्ञानशाकुंतलम् के नादीपाठ में अष्टमूर्ति शिव का स्मरण करके प्रकृति के सभी तत्वों का समन्वित रूप से ध्यान दिया गया है। इनका परस्पर संतुलन और सामंजस्य ही प्रकृति में शिव (कल्याण) तत्व की प्रतिष्ठा करता है। जैसे रक्षित धर्म ही मनुष्य की रक्षा करने में समर्थ होता है (धर्मो रक्षति रक्षितः) वैसे ही संरक्षित पर्यावरण ही हम सबकी रक्षा कर सकता है। भारतीय दर्शन और संस्कृति में आदि–अनादि काल से ही प्रकृति के प्रति ईश्वरीय भाव निहित रहा है। भारतीय संस्कृति के मूल में पर्यावरण का पोषण, संवर्धन तथा उससे ललित लयता का भाव निहित है। गीता, रामायण ही नहीं, कुरान शरीफ, बाइबिल और गुरूग्रन्थ साहिब आदि में भी प्रकृति रक्षण और संवर्धन का भाव मिलता है। पंचतंत्र जातक कथाओं तथा लोककथाओं में भी प्रकृति और पर्यावरण के प्रति संवेदना जगाने का मतव्य और प्रयास दिखाई देता है। प्रकृति हमारे साहित्य की आत्मा है। अन्य शिल्प एवं ललित कलाओं से भी प्रकृति की अंतरंगता है। भारतीय लोक संस्कृति में प्रकृति और पर्यावरण की भाव प्रवणता सभी जगह विद्यमान है। देश के विभिन्न अंचलों में अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं। यही तो भारतीय संस्कृति की विशेषता है। जिस तरह नदी में अन्य सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं उसी तरह यहाँ सास्कृतिक उत्थान और पुनर्निर्माण में अन्य संस्कृतियों से सखी भाव है। चूंकि लोककलाएँ एवं लोक जीवन प्रकृति के समीप अधिक प्रमादिता से पल्लवित, पुष्पित और फलित होते हैं अतः प्रकृति की प्रत्येक क्रिया–अनुक्रिया का प्रभाव भी हमारी लोक संस्कृति पर पड़ता है।

देखा जाये तो साहित्य, संस्कृति और आध्यात्मिक परम्पराओं का भी पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है। पर्यावरण संरक्षण में जैन धर्म की

भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। पर्यावरण संरक्षण को जैन धर्म ने अत्यधिक महत्व दिया है। प्रथम जिन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण को जैविक संतुलन बनाए रखने के लिए सशक्त सिद्धान्तों की स्थापना की थी, जो आज भी उपयोगी और प्रभावी है। जैन धर्म ने पर्यावरण के मूल घटक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के दुरूपयोग, अत्यधिक उपयोग या नष्ट करने से सम्बन्धित सामाजिक एवं धार्मिक नियम स्थापित किए हैं, जिससे प्रकृति के इन उपहारों का संरक्षण हो सके और पर्यावरण प्रदूषित न हो। जैन साधु अपने जीवन में इको जैनिज्म एवं संसाधन प्रबंधन एवं एप्लाइड जैनिज्म के सिद्धान्तों का सामावेश एवं अभिव्यक्तिकरण करते हैं वे अपने साथ सिर्फ काष्ठ निर्मित कमण्डलु और मोरपंख से बनी पिच्छी रखते हैं। वे दोनों उपकरण पर्यावरण संरक्षण एवं आत्मोन्नति के प्रतीक हैं। ये ऐसी सामग्री से निर्मित, जो स्वयमेव प्राकृतिक रूप से जीवों के द्वारा छोड़ी गई है। साधुजन कमण्डलु के जल का दैनिक आवश्यकता हेतु बड़ी मितव्ययिता से उपयोग करते हैं। दैनिक क्रियाओं के दौरान पिच्छी के द्वारा वे सूक्ष्म जीवों की प्राणरक्षा का प्रयास करते हैं। इस तरह मितव्ययिता और प्राणी रक्षा का संदेश उनके जीवन से अनायास ही प्रचारित होता रहता है। जैन मुनि पर्यावरण के श्रेष्ठ संरक्षक हैं वे हमेशा शिक्षा देते हैं कि हमें स्वच्छ पर्यावरण में रहना चाहिए, छना हुआ शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्धक जल ग्रहण करना चाहिए। देखा जाय तो जैन संस्कृति प्रकृति आधारित संस्कृति है, प्रत्येक जैन तीर्थंकर को विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति किसी विशेष वृक्ष की छाया में प्राप्त हुई। जैन साहित्य में इन वृक्षों को तीर्थंकर वृक्ष या केवली वृक्ष कहते हैं। भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर पर्यन्त सभी तीर्थंकरों के वृक्ष पर्यावरण संरक्षण के जनक एवं संपोषक हैं। यह मान्यता है कि प्रत्येक वृक्ष में सम्बन्धित तीर्थंकर का आंशिक प्रभाव विद्यमान रहता है। विशेष तीर्थंकर वृक्ष की सेवा, दर्शन और अर्चना से सम्बन्धित तीर्थंकर की कृपा प्राप्त होती है। तीर्थंकर वृक्ष के रोपण से सम्बन्धित स्थल की आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती है। 24 तीर्थंकरों के वृक्ष क्रमशः वट, सप्तवर्ण, शाल, सरल, प्रियंगु, शिरीष, नाग, बहेड़ा, बेल, तेन्दु, कदम्ब, जामुन, पीपल कैथा, नन्दी, तिलक, आम, अशोक, चम्पा, मौलश्री, बांस देवदार एवं साल हैं। पंचम तीर्थंकर सुमतिनाथ एवं षष्ठम तीर्थंकर पदमप्रभु दोनों तीर्थंकर ने प्रियंगु वृक्ष को ही स्वीकार किया है। इस प्रकार 24 तीर्थंकरों ने 23 प्रकार के भिन्न–भिन्न वृक्षों को स्वीकार किया है।

इस प्रकार भारतीय साहित्य, जगत में पर्यावरण संरक्षण हेतु अधिक महत्वपूर्ण प्रयास हुए और हो रहे हैं। पर्यावरण संरक्षण आज विश्व के सम्मुख एक ज्वलंत समस्या है. पिछले कुछ दशकों से तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण, प्राकृतिक संसाधनों के अधिकाधिक दोहन और भौतिक संसाधनों के अंधाधुंध उपयोग ने जीवन एवं सृष्टि को समाप्त करने के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। पर्यावरण जीवन को स्थायित्व देने वाली प्रणाली है, जिसमें जड़ और चेतन दोनों तरह के तत्व (जैसे–हवा, पानी, मिट्टी, जीवसमूह) मौजूद है, जिनमे से अनेक एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं, और मानव गतिविधि यों से पैदा होने वाला पर्यावरण प्रदूषण इन तत्वों को विकृत करता है अथवा उनका निष्कर्ष यह है कि भारतीय साहित्य, संस्कृति, आध्यात्मिक, धार्मिक ग्रन्थों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक रहा है। परन्तु 21वी सदी के भूमण्डलीकरण में आज प्राकृतिक संसाधनों के अधिकाधिक दोहन और भौतिक संसाधनों के अधिकाधिक उपयोग ने जीवन एवं सृष्टि को समाप्त करने की ओर अपने कदम बढ़ा दिए हैं। अगर अब इसकी अनदेखी की गई तो बहुत देर हो जायेगी और मनुष्य कुछ नही कर पायेगा। उसके पास अंतिम समय में कहने के लिए सिर्फ चद चार लाइने रह जायेंगी

डूबने लगी है कश्तियाँ किनारो पर ठहर जाओ,
बहुत धूल है इस शहर मे जरा ठहर जाओ।
कहा है वो परिन्दे जो चहकते थे डालियों पर,
मरने लगे हैं फड़फडाकर, जरा ठहर जाओ।

अभी भी समय है, हमें अपने साहित्य के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के और अधिक ठोस प्रयास करने होगे। पर बिना जनता के सहयोग से यह कार्य संभव नहीं है आज जनता की जनभागीदारी से ही पर्यावरण प्रदूषण को संतुलित बनाया जा सकता है। तमाम बुद्धिजीवी, लेखक, कवि, पर्यावरणविद् समाजसेवी, संस्थाएँ आम नागरिक के सहयोग से ही पर्यावरण को दूषित होने से बचाया जा सकता है। आज स्थिति इतनी गंभीर हो गई है कि अब अगर नहीं चेते और युद्ध स्तर पर ध्यान नहीं दिया गया तो शायद भविष्य में सोचने का समय नहीं बचेगा।

संदर्भ ग्रन्थ –

1. पर्यावरण और प्रदूषण–दयाशंकर त्रिपाठी, पिलग्रिम्स बुक हाउस. दुर्गा कुण्ड, वाराणसी, 2008. पृ. 7,121
2. पर्यावरण प्रदूषण वर्तमान और भविष्य, डॉ. अमित शुक्ल, पुस्तक नई सहस्त्राब्दी का पर्यावरण, संपादक डॉ. वीरेन्द्र सिंह, आमेगा पब्लिकेशन मुरारी लाल स्ट्रीट अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 281, 284,286, 290,292
3. चौरसिया राम आसरे, 1992 पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबन्ध, बोहरा पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, पृ. 165 दृ
4. दैनिक जागरण, समाचार पत्र, जबलपुर 3 जून, 2008. पृ.06
5. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष।